

प्राकृत भाषा के ध्वनि परिवर्तनों की भाषा वैज्ञानिक व्याख्या

डा० देवेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर

विचार दो : भाषा एक

वैचारिक मतभेद के बावजूद श्रमण-ब्राह्मणों की अभिव्यक्ति की भाषा एक रही है। संस्कृत और प्राकृत एक ही आर्य भाषा रूपी सिक्के के दो पहलू हैं। आर्यों के पहले भारत के मूल निवासी कौन थे, या आर्य ही इस देश के मूल निवासी थे, जहाँ से वे बाहर फँसे या बाहर से आकर यहाँ बसे ? यह लम्बे विवाद का विषय है। लेकिन यह तय है कि—आर्य भाषा का प्राचीनतम साहित्य 'ऋग्वेद' में सुरक्षित है। अतः उसके भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की कहानी 'ऋग्वेद' की भाषा से शुरू होती है। उसके बाद संस्कृत आती है और उसके समान्तर प्राकृत : भाषा सामाजिक वस्तु है, जो व्यक्तिगत उद्देश्य की पूर्ति भी करती है। भाषा सामाजिक आवश्यकता, एकरूपता और स्थिरता की माँग करती है, जब कि—व्यक्तिगत आवश्यकता लचीलेपन की। एक उसे स्थिरता प्रदान करना चाहती है, दूसरी परिवर्तन के लिए मजबूर करती है। एक संस्कार चाहती है, दूसरी सहजता। संस्कृत और प्राकृत आर्य भाषा के इन्हीं दो तत्वों का प्रतिनिधित्व करती है, और उसके विकास की कहानी भी इन्हीं तत्वों की प्रतिद्वन्द्विता की कहानी है।

परिवर्तन प्रक्रिया

प्राकृत (जिसमें शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृत दोनों हैं) का विश्लेषण करते समय प्राकृत वैयाकरण भी पाणिनि द्वारा निर्धारित मानदण्ड का ही प्रयोग करते हैं। अतः वे प्राकृत में होने वाले ध्वनि परिवर्तनों का उल्लेख विभिन्न नियमों के द्वारा करते हैं। यह एक मान्य तथ्य है कि ध्वनि परिवर्तन के बीज उसकी उत्पादन प्रक्रिया में पड़े रहते हैं, इस परिवर्तन के निश्चित कारण और दिशाएँ होती हैं, अतः प्राकृत वैयाकरणों द्वारा निर्दिष्ट ध्वनि परिवर्तनों की भाषा वैज्ञानिक व्याख्या कर उन्हें निश्चित प्रवृत्तियों में विभाजित किया जा सकता है। चूँकि ध्वनि-भाषा की महत्वपूर्ण इकाई है, अतः उसमें होने वाला परिवर्तन भाषा की समूची रचनात्मकता को प्रभावित करता है। ध्वनि से सम्बन्धित ये परिवर्तन कुछ तो सार्वभौम सार्वकालिक होते हैं और कुछ देश-काल द्वारा नियन्त्रित।

परिवर्तन का पहला कारण

परिवर्तन का पहला कारण—संस्कृत की कुछ ध्वनियों का प्राकृत में न होना है, ये हैं—ऋ-ऐ और श, ष आदि। इससे सिद्ध है कि प्राकृत ध्वनि का विचार प्राकृत वैयाकरण संस्कृत ध्वनि के आधार पर करते हैं। प्राकृत वैयाकरण ध्वनि की सिद्धि लोक से मानते हैं। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि लोक किसी ध्वनि का उच्चारण सब समय और सब क्षेत्रों में एक-सा करे। अतः आगे चलकर एकरूपता के लिए उसका भी संस्कार करना पड़ता है। संस्कृत के वृद्धि स्वर

‘ऐ’ और ‘ओ’ के स्थान पर प्राकृत में दो परिवर्तन हुए। ए ओ (गुण स्वर) अथवा ‘अय’ और ‘अव’ जो उन्हीं के दूसरे रूप हैं। ‘ए’ और ‘ओ’ क्रमशः ‘अइ’ और अउ के गुण रूप हैं। ‘इ’ और ‘उ’ का अर्ध स्वर ‘य’ और ‘व’ में विनिमय सम्भव है।

लेकिन एक दो शब्दों में ‘आव’ सुरक्षित है, जैसे—गौरव का गाव और ‘नी’ का ‘नाव’ जो वस्तुतः गौ और नी के ही वृद्धि रूप हैं। अर्थात् संस्कृत के वृद्धि स्वरों के भग्नावशेष कहीं-कहीं प्राकृत में सुरक्षित हैं—‘ऐ’, अइ, । वैर=वइर । कैलाश=कइलास । कैरव=कइरव । दैत्य=दइच्च । यथार्थ में वृद्धि स्वर ‘ऐ’ ‘ओ’ ‘ए’ ‘ओ’ के अ से मिलकर वृद्धि रूप बनते हैं, प्राकृत उन्हें गुण या मूल अइ, अउ के रूप में लिखने के पक्ष में है। क्योंकि उनका उच्चारण इसी रूप में है।

ऋ के विकल्प

ऋ ने अपनी अनुपस्थिति से प्राकृत शब्दों को सबसे अधिक प्रभावित किया। प्राकृत वैयाकरण ऋ की जगह निम्नलिखित ध्वनियों का विधान करते हैं—

- (१) अ और उ—ऋषभ=उसहो-वसहो ।
- (२) इ—मातृका=माइआ ।
- (३) ओ—उ=मृषा=मोसा—मुसा । वृत—वोट ।
- (४) रि-री=ऋच्छ—रिच्छ । ऋण—रिण ।

आहत और दृप्त शब्दों के लिए प्राकृत वैयाकरण क्रमशः आदि ‘अ’ और ‘दरि’ शब्द का आदेश करते हैं। जबकि इन्हें साधारण ध्वनि प्रक्रिया में होने वाले परिवर्तनों के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। जैसे—आहत—आदृअ—आदिअ—आदिअ यहाँ ऋ के योग से ‘द’ का महाप्राण मूर्धन्य भाव और ‘ऋ’ ‘इ’ के रूप बन गई। इसी प्रकार दृप्त से दत्त=दरित—दरिअ ‘दृ’ का ढरि और मध्य के ‘त’ का लोप। इनके लिए अलग से नियम निर्देश करने की आवश्यकता नहीं।

स्वर विनिमय

प्राकृतों में परिवर्तन का दूसरा कारण है एक स्वर के स्थान पर दूसरे स्वर का आ जाना। प्रारोह=पारोह—परोह । स्वप्न=सिविण—सिमिण । व्यलीक=विलिअ । व्यञ्जन=विञ्जन=विअण । इन उदाहरणों में लोप (र) दीर्घ का ह्रस्व स्वरागम और व्यंजनागम से काम चल जाता है। पक्व=पक्क=पिक्क । पुष्कर=पुक्कर । मुद्गर=मुग्गर । नूपुर=णेउर में पूर्ण सावर्ण्य भाव पर सावर्ण्य भाव और मूर्धन्य भाव से उक्त रूपों का विकास हुआ।

स्थूण के स्थान पर थूणा=थोण=थूणा भी। प्राकृत में आदि संयुक्त व्यंजन में एक के लोप की प्रवृत्ति व्यापक है। स्थाणु में प्राकृत वैयाकरणों के अनुसार ‘स्थ’ को ‘ख’ होता है। स्थाणु=खाणु । जिससे वर्ण प्रत्यय के द्वारा खूणा खूँटी बना।

मुकुल=मउल । भूकुटी=भिउडी । आदि असावर्ण्य भाव के उदाहरण हैं। इसका अर्थ है कि जब दो समीपवर्ती समान ध्वनियों में से एक बदल जाती है तो असावर्ण्य भाव कहलाता है। लेकिन जब दो समीपवर्ती असमान ध्वनियों में एक-दूसरी को अपने अनुरूप बना लेती है तो यह सावर्ण्य भाव की प्रवृत्ति कहलाती है। व्यलीक और स्वप्न में जो क्रमशः ‘य’=इ और व=उ होता है। वह संप्रसारण के नियम के द्वारा। क-ख-ग-घ, च-ज-त-द-य और प आदि मध्यम व्यंजनों के लोप के कारण भी काफी ध्वनि परिवर्तन संभव है। जैसे—पवन=पअन—पउन । गमन=गअन=गउन ।

महाप्राण ध्वनि

महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर केवल ‘ह’ महाप्राण ध्वनि के शेष रहने की प्रवृत्ति भी बहुत व्यापक है।

जैसे—श्लाघा=सलाह । स्वभाव=सहाव । नाथ=नाह । साधु=साहु । स्पर्श महाप्राण का नाद महाप्राण रह जाता है । पुच्छ=पिछ । कभी-कभी महाप्राण ही रहता है—पिहं ।

स्पर्श का नाद होता है—

जटिल=झडिल । नट=नड । घट=घड । प्रति=पडि ।

‘उ’ के स्थान पर ‘ल’ (उलयोरभेदः) गुल=गुड । वाडिस=वलिस । फाड=फाल ।

‘ट’ के स्थान पर महाप्राण नाद ढ का होना—कैटभ=केढव । सहा=सडा । पिठर=पिट्टर । सकट=सअड । कुठार=कुठार ।

र और ल में विनिमय की आभ प्रवृत्ति थी ।

कातर=काइल । गरुड=गरुल । हरिद्र=हलिद्र । द का मूर्धन्य भाव ‘ड’ जैसे—

दर=डर । दंश=डंस । दइ=ड्रह । दम्भ=ड्रम्भ । दर्म=डम्भ (डाम) पृथ्वी=पुढवी ।

निशीथ=निसीठ । प्रथम=पढम । ढोला=डोला । दंड=डंड । य और व के अतिरिक्त महाप्राण ध्वनि भी है ।

भरत=भरअ=भरहि । वसती=वसई=वसही ।

‘थ’ और ‘ष’ का महाप्राण होता है । कभी-कभी महाप्राण ‘ह’ से भी विनिमय संभव है—

पाषाण=पाहान । प्रत्युष=पच्चूह । पथ=पइ । शब्द के आदि का ‘ष’ के ‘छ’ बनने के उदाहरण हैं—

षट्पद=छप्पअ । षष्ठी=छट्ठी ।

विशेष ध्वनि परिवर्तन

प्राकृत वैयाकरण, गृह और दुहिता के स्थान पर ‘घर’ और ‘धुअ’ आदेश करते हैं । परन्तु इन्हें ध्वनि परिवर्तन की प्रक्रिया से सिद्ध किया जा सकता है । जैसे—गृह=गरह (ऋ=अर=गृ=गह) वर्ण्य प्रत्यय से ‘ग’ में ‘र’ मिलकर महाप्राण घर । दुहिता से मध्यम ‘त’ का लोप और ‘द’ का महाप्राण और दीर्घ होने से धुआ बनता है । एक ही शब्द के पूर्व सावर्ण्य और पर सावर्ण्य भाव दोनों प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं, जैसे—रक्त=रक्क=रग्ग=रत्त । शक्त=सत्त=सक्क । पर्यस्त=पर्याण और पर्यक से बनने वाले पल्लस्त=पल्लाण और पल्लंक में (रलयोरभेदः) का प्रभाव है ।

सूक्ष्म से सुणह बनने में यह ध्यान रखना उचित होगा कि सूक्ष्म के क्ष में क+ष पड़ा हुआ है, उससे—सुमह=सूणह=सुणह बना ।

मध्यस्वरागम के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

हर्ष=हरिस । अमर्ष=अमरिस । श्री=सिरी, ह्री=हिरी । क्रिया=किरिआ । महाराष्ट्र से मरहट्ट बनने में वर्ण प्रत्यय की प्रवृत्ति सक्रिय है ।

निष्कर्ष

इस प्रकार प्राकृत वैयाकरणों का सबसे बड़ा प्रदेय यह है कि उन्होंने प्राकृतों के साहित्य को सुरक्षित रखा, जिससे प्राचीन और आधुनिक भाषाओं का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन हो सका । इन उदाहरणों से भारतीय आर्य भाषाओं में होने वाली ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी रिक्तता को भरा जा सकता है और उन प्रवृत्तियों का वर्गीकरण किया जा सकता है कि जो उसके परिवर्तन में हीनाधिक मात्रा में होती रहती हैं ।

आदर्श गृहस्थ बनाम श्रावकधर्म

□ कु० राजल बोथरा, रतलाम

आज चारों ओर अशांति का वातावरण फैला दृष्टिगोचर होता है यद्यपि आज विज्ञान ने हमारे लिए ऐसे विविध साधन उपलब्ध किये हैं जिनके द्वारा मानव अपने सुख-शान्ति-उन्नति आदि विकास का चरमोत्कर्ष प्राप्त कर सकता है फिर भी मानव मन को इतनी अशांति क्यों है ?

अगर इस प्रश्न का गहराई के साथ कारणों सहित अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि मानव दृष्टि “स्व” की ओर न होकर “पर” की ओर आकृष्ट है क्योंकि वह दूसरों की सुख-सुविधाओं की सामग्री को देखकर उन्हें स्वयं के लिए प्राप्त करने हेतु लालायित रहता है। तब वह यह नहीं सोचता है कि मेरी आर्थिक स्थिति उस व्यक्ति के समान है या नहीं जितकी मैं समानता करना चाह रहा हूँ, जिस प्रकार नदी जब अपनी सीमा का परित्याग कर देती है तो उसका विकरालस्वरूप प्रलय रूप धारण कर लेता है। उस समय समस्त प्राणी जगत के लिये एक विषम परिस्थिति निर्मित हो जाती है, ठीक वही दशा आज मानव की है। अगर मानव पराकृष्ट रहेगा तो उसके जीवन में संघर्ष अशांतिमय वातावरण उत्पन्न होता रहेगा। जिसका परिणाम मानव जगत के लिए शोचनीय होगा। जब तक मानव स्व की ओर आकृष्ट न होगा, तब तक वह सुख, प्रगति एवं शांति की प्राप्ति नहीं कर सकता।

आज का मानव स्व की ओर आकृष्ट न होकर पराकृष्ट है और यही कारण है कि आज विश्व में शस्त्रों की होड़, युद्ध, खाद्य समस्या, डकैती आदि कई भांति की समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। आज का मानव भगवान महावीर द्वारा बताये गये श्रावकधर्म का दैनिक जीवन में पालन और आचरण करे तो उसके जीवन यापन में जितनी भी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, उनका निराकरण सम्भव है।

भगवान महावीर ने ५ व्रत—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह अर्थात् झूठ मत बोलो, हिंसा मत करो, चोरी मत करो, असंयम से मत रहो, संग्रह न करो—बतलाये हैं अगर इनका गहराई के साथ अध्ययन करें तो स्पष्ट होता है कि मानव की उन प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करने का प्रयास किया गया है जिनके द्वारा देश या समाज में अराजकता, द्वेष, अशांति निर्मित हो। हिंसा चोरी, अति कुत्सित जीवन, झूठ, संग्रह ये सामाजिक पाप ही हैं। गृहस्थ इनका जितना अधिक परित्याग करेगा उतना अधिक सन्ध व समाज हितैषी माना जायेगा। मानव की आवश्यकता को ध्यान में रखकर इनका अणुव्रत रूप से पालन कर आदर्श गृहस्थ या श्रावक का स्वरूप स्थापित करने का सभी तीर्थंकरों द्वारा उपदेश दिया गया। इन व्रतों द्वारा किस प्रकार अपने जीवन को उत्कृष्ट बनाया जाये जिससे जीवन की वैधानिकता स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो सके।

संक्षेप में आदर्श गृहस्थ की आचरण संहिता इस प्रकार आंकी जा सकती है—

अहिंसा

प्रमाद के वश होकर प्राणघात करना हिंसा है। प्रमाद यानि मन का द्वेष, ईर्ष्यात्मक

प्रवृत्ति एवं प्राणघात से तात्पर्य न केवल किसी प्राणी को मार डालना किन्तु उसे किसी प्रकार का कष्ट देना भी है। हिंसा के दो भेद हैं :—

(१) भाव हिंसा एवं (२) द्रव्य हिंसा।

१. भावहिंसा

अपने मन में किसी प्राणी के प्रति हिंसा का विचार करना।

२. द्रव्यहिंसा

अपनी शारीरिक क्रिया द्वारा किसी प्राणी को प्राणरहित करना, वध-बंधन आदि से पीड़ा पहुँचाना। अधिक पाप भावहिंसा में ही है, क्योंकि उसके द्वारा हिंसा हो या न हो लेकिन विचारक के विषुद्ध अन्तरंग का घात होता है। द्विन्द्रिय आदि त्रस जीवहिंसा के चार भेद बताये हैं— (१) आरम्भी—यह हिंसा गृहस्थी से सम्बन्धित हिंसा कहलाती है यह अनिवार्यतः होने वाली हिंसा है। (२) उद्योगी—यह कृषि-व्यापार, दुकानदारी, वाणिज्य, उद्योग-घन्धों में होने वाली हिंसा है। (३) विरोधी—इस प्रकार की हिंसा के अन्तर्गत स्वजन, परिजन, देश, समाज एवं धर्म के लिए होने वाली हिंसा आती है। (४) संकल्पी हिंसा—इस प्रकार की हिंसा स्वार्थवश की जाने वाली हिंसा है। यद्यपि इनमें से गृहस्थी संकल्पी हिंसा का त्यागी हो सकता है लेकिन बाकी की तीन प्रकार की हिंसाओं में वह व्यापक विवेक के अनुसार संयम रखे।

अतिचार

प्राणी को किसी प्रकार की पीड़ा पहुँचाना आदि अनेक प्रकार की हिंसा से एक आदर्श श्रावक बनने के लिए बचना आवश्यक है। श्रावक के परिजनों व तिर्यच पंचेन्द्रिय जीवों के प्रति ५ प्रकार के अतिचार कहकर निषेध किया गया है जैसे—किसी भी प्राणी को बाँधकर रखना, समय पर भोजन पानी न देना, पीटना, अवयवों का छेदन-भेदन करना, उनकी शक्ति से अधिक भार लादना। इनसे बचने के अलावा अहिंसा को दृढ़ रूप देने के लिए भगवान ने ५ प्रकार की भावनाओं को गृहस्थ को मन के विचारों, वचन के प्रयोग, चलने फिरने और वस्तुओं को खुला न रखने, भोजन सम्बन्धी क्रियाओं के प्रति जागरूक रहने को कहा है।

इस प्रकार जैन शास्त्रों में हिंसा के स्वरूप और अहिंसा व्रत के विवेचन को सुरक्षा रूप से प्रस्तुत किया है। इससे स्पष्ट है कि इस व्रत का पालन श्रावक को सुशील, सम्य, समाज, देश एवं धर्म हितैषी बनाने और अनिष्टकारी प्रवृत्ति को रोकने में सहायक है। आज इसकी संसार में अति आवश्यकता है। ये व्यक्ति के आचरण का शोधन करता है। इसी प्रकार देश-समाज की नीति का अंग बनकर देश में सुख शांति-एकता स्थापित करने में सहायक है इन्हीं गुणों के कारण अहिंसा जैनधर्म में ही नहीं अन्य सभी धर्मों में मान्य है। जैसे बाइबिल के पाँचवे अध्याय में लिखा है कि—

Thou shalt not kill any body then who cause you.

इसी प्रकार कुरान के चौथे तुक्के में कहा गया है कि—

“खुद जिओ और दूसरों को भी जीने दो।”

अहिंसा के प्रचार के लिए आवश्यक है कि जाति-पाँति का भेदभाव लुप्त हो, अन्याय व हिंसा न बढ़े एवं बालक को ऐसा संस्कारयुक्त शिक्षण दिया जाए कि जिससे बालक को अन्याय, हिंसा, अत्याचार आदि के प्रति घृणा उत्पन्न हो ताकि वह आगे चलकर आदर्श जीवन बिता सके।

सत्य

असत्य वचन बोलना ही झूठ कहलाता है। असत्य या वह सत्य जो वस्तु स्थिति के अनुकूल और हितकारी नहीं हो, झूठ है। इसलिए शास्त्र में कहा गया है कि "सत्य बोलो, प्रिय बोलो और सत्य का प्रयोग इस तरह न करो जो दूसरों को अप्रिय हो।" इसका मूल भाव गृहस्थ या व्यक्ति के आत्म-परिणामों की शुद्धि, स्व अथवा दूसरों का अहित एवं हिंसा का निवारण है। इसका पालन करने के लिए श्रावक को इस अणुव्रत की सीमा यह है कि स्वयं या दूसरों की रक्षा निमित्त किये गये कार्यों में असत्य के प्रयोग में आंशिक पाप का भागी है। क्योंकि उनकी मूल भावना दूषित नहीं होना यही उसका कारण है। द्रव्यहिंसा से भावहिंसा का महत्त्व पाप-पुण्य के विचार से अधिक है।

अतिचार

द्रव्य व भावहिंसा के अतिरिक्त "झूठा उपदेश देना, किसी का रहस्य प्रगट करना, झूठे लेख तैयार करना, किसी की अमानत को वापस न लौटाना या कम देना या भूल जाना, किसी का मन्त्र भेद खोल देना" ये भी इसके ५ मूल अतिचार हैं जो कि स्पष्ट रूप से सामाजिक जीवन में हानिकारक सिद्ध हुए हैं, जिनके द्वारा मानव जीवन संघर्षमय होता है। इसके परिपालन के लिए ऋध, लोभ, भीरुता, हँसी-मजाक का परित्याग और भाषण में औचित्य का ध्यान रखने का अभ्यास व आवश्यक रूप से ध्यान रखना अनिवार्य है। जैनधर्म के अलावा वैदिक धर्म में भी "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" को ही अधिक महत्त्व दिया है।

अस्तेय

किसी भी व्यक्ति को बिना आज्ञा के कोई वस्तु लेना भी चोरी है। आदर्श गृहस्थ के लिए उस वस्तु को लेने का अधिकार है जिस पर स्पष्ट रूप से किसी का अधिकार एवं रोक न हो एवं चोरी न करना और दूसरों के द्वारा करवाना चोरी के सामान या घन का उपयोग करना या रखना, स्मगलिंग द्वारा वस्तुओं का आयात-निर्यात करना, निश्चित माप-तोल से कम या अधिक तोलना, असली के बदले नकली देना ये अस्तेय के अतिचार हैं। इनका आदर्श गृहस्थ को परित्याग करना चाहिए। इस व्रत के द्वारा व्यापार में सचाई व ईमानदारी को स्थापित करने का प्रयत्न प्रस्तुत किया है। जिनका पालन इस समय अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि आज चारों ओर भ्रष्टाचार एवं मिलावट, कम देना, असली के बदले नकली देना आदि का प्रचलन उच्च स्तर पर है जो कि भयंकर सिद्ध हो रहा है। मिलावट के कारण अनेकों प्रकार की बीमारियाँ पैदा हो रही हैं। जिसके कारण आज मानव समाज व देश में अशांति फैल रही है। इन सब बातों के निवारण के लिए आज अस्तेय व्रत के पालन की आचार संहिता की परम आवश्यकता है, आदर्श गृहस्थ के लिए अति आवश्यक है।

ब्रह्मचर्य

प्रत्येक इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है किन्तु अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा स्पर्श इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना कठिन है अतः साधारण बोलचाल की भाषा में स्पर्शनेन्द्रिय को वश में करना, वीर्य की रक्षा करना या स्त्री के संसर्ग का त्याग करना ही ब्रह्मचर्य का अर्थ है। किन्तु सूक्ष्मता से अर्थ पर विचार किया जाय तो स्पष्ट है कि प्रत्येक इन्द्रिय को जीतना और आत्मनिष्ठ बन जाना ही ब्रह्मचर्य का अर्थ है। इसके अन्तर्गत चाहे स्त्री हो या पुरुष उसे स्व-स्त्री या स्व-पति के अलावा समस्त पुरुषों को भाई, पिता व पुत्र मानना व सभी स्त्रियों को माता, बहन पुत्री सहस्र विचार एवं व्यवहार रखना श्रावक पूर्ण रूप से अंगीकार करता है तो उसे सर्वथा ही विषय-भोगों का परित्याग नहीं करना पड़ता है।

अतिचार

दूसरों का विवाह कराना, पर-स्त्री या पर-पुरुष-गमन करना, तथा विषय-भोग की तीव्र अभिलाषा करना ये इसके प्रमुख अतिचार हैं। रागात्मक कहानियाँ या अश्लील साहित्य के अध्ययन का परित्याग करना ब्रह्मचर्य को दृढ़ता प्रदान करता है। इसके द्वारा मानव को sex भावना को मर्यादित तथा समाज से तत्सम्बन्धी दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

आज वैज्ञानिक विकास की ओर बढ़ने के साथ-साथ मानव अपना चारित्रिक पतन स्तर तेजी से नीचे गिराता जा रहा है। आज नवयुवकों एवं नवयुवतियों में मादक द्रव्यों का सेवन जैसे—सिगरेट, शराब, अफीम आदि एवं डेटिंग प्रथा अत्यधिक रूप से प्रचलित हो रही है। यद्यपि आज वैज्ञानिकों ने खोज द्वारा स्पष्ट कर दिया कि मादक द्रव्यों के सेवन से कैंसर, क्षय, रक्तचाप, आदि भाँति-भाँति की बीमारियाँ फैल रही हैं जो कि प्राणघातक सिद्ध हो रही हैं। आज व्यक्ति फैशन में इतना आगे बढ़ चुका है कि उन्हें अपनी संस्कृति एवं सभ्यता का ख्याल नहीं है और पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति को अपनाकर उसे भूलता जा रहा है यद्यपि आज पाश्चात्य लोग भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति अपना रहे हैं और आध्यात्मिक शान्ति की खोज हेतु उनका भारत आगमन जारी है। आज वर्तमान में उत्पन्न इन समस्याओं का समाधान इस व्रत में अन्तर्निहित है। अतः आज इस व्रत का पालन विश्व के सभी मानवों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके पालन से अनेकों समस्याओं का निराकरण सम्भव होने के साथ-साथ मानव को आत्मिक-मानसिक शान्ति अवश्यमेव प्राप्त होगी और नैतिक स्तर उन्नति पर होगा। साथ-साथ शारीरिक आरोग्य और शारीरिक शक्ति प्राप्त कराने में सहायक सिद्ध होगा।

परिग्रह

संग्रह का दूसरा नाम परिग्रह है। ज्ञातपुत्र भगवान महावीर ने मूर्च्छाभाव अर्थात् ममत्व भावना को ही परिग्रह का नाम दिया है। तात्पर्य यह है कि जहाँ राग है, ममता है, लोलुपता है वहाँ बाह्य वस्तु का संसर्ग चाहे न हो पर परिग्रह अवश्य है।

आज मानव में संग्रह वृत्ति व्यापक रूप से फैल गई है और यही कारण है कि आज मानव को अपने जीवन यापन की वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए अनेक कठिनाई उत्पन्न हो रही है। यह समस्या हमारे देश में ही नहीं अपितु विश्व के अनेक देशों में व्यक्त है। जैसे अगर देखा जाय तो हमारे देश में यह समस्या आंशिक रूप से जरूर है लेकिन इसको विरहित रूप देने का श्रेय पूंजीपति, काले धन का व्यापार करने वाले, स्मलिंग का व्यापार करने वालों को है। क्योंकि अनावश्यक रूप से संग्रह, बाहरी देशों को निर्यात कर अधिक धन कमाने के लालच में व्यापार करने वाले लोगों ने संग्रह कर रखा है और दूसरी तरफ गरीब मजदूर जो कि रोज मजदूरी करके रोज अन्न खरीदता है उसे अन्न प्राप्ति के लिए अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

आज देश में अनेकों लोग ऐसे हैं जिन्हें पेट भर भोजन नहीं मिलता है दूसरी ओर संग्रह किया गया अन्न सड़ रहा है, तब क्या यह संग्रह वृत्ति उचित है? परिग्रह रूप लोभ का पारावार नहीं है। इस वृत्ति या लोभ के कारण आज समाज एवं देशों में अनेकों अतिरिक्त विषमताएँ, विरोध, अशांति, आंदोलन, संघर्ष आदि उत्पन्न हो रहे हैं। इसके निवारण एवं नियन्त्रणों पर अधिक जोर दिया जा रहा है। कानूनों के माध्यम से अनेक प्रयत्न किए जा रहे हैं जो असफल होते जा रहे हैं क्योंकि उनसे मानव की मनोवृत्ति शुद्ध नहीं होती और कानूनों से उसकी मानसिक वृत्ति छलकपट और अनाचार की ओर बढ़ने लगती है। जैनधर्म में अपदार्थ गृहस्थ के नैतिक विधान के अन्तर्गत संग्रह वृत्ति को अस्पृश्वर चेतना द्वारा नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया गया है और अपने कुटुम्ब पालन आदि के विचार को ध्यान रख अपने स्वयं परिग्रह की सीमा निर्धारित करने

को कहा है। नियत सीमा से अधिक धन-धान्य का संचय न करना और अधिक होने पर उसे दवाइयाँ, वस्त्र, अन्न आदि दान करना, विद्यालयों की स्थापना, जीव रक्षा आदि हितकारी कार्य करना चाहिए।

अतिचार

मूमि, सोना, चाँदी, बर्तन, अधिक धनधान्य का संग्रह ये इसके प्रमुख अतिचार हैं। इनको ध्यान में रखते हुए प्रत्येक गृहस्थ पालन करे। विश्व की बड़ी से बड़ी समस्या करोड़ों लोगों के सामने रोटी का सवाल है। दूसरी ओर धन एवं साम्राज्यवाद अमर्यादित इच्छाओं की विषमता के कारण आज सारा विश्व विषम परिस्थितियों से गुजर रहा है। इन उत्पन्न समस्याओं का निराकरण भगवान महावीर के अपरिग्रहवाद के पालन में है। यही उसे सच्ची शाश्वत शांति प्रदान कर सकता है।

इस प्रकार भगवान महावीर द्वारा गृहस्थ धर्म में जिन व्रतों का उल्लेख प्रस्तुत किया है उनको जीवन में अनुसरण योग्य बनाने के लिए उन भावनाओं का विधान बताया है जिनके द्वारा पापों के प्रति अरुचि और सदाचार के प्रति रुचि उत्पन्न हो। जो पाप है उनके द्वारा जीवन में अनेक प्रकार के सुखों के बजाय दुखों का ही निर्माण होता है। प्रत्येक जीवित प्राणी के प्रति मंत्री भाव, गुणी व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा प्रेम, दुखी दोन प्राणी के प्रति कारुण्य प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति राग द्वेष व ईर्ष्या भावना रहित माध्यस्थ भाव हो। इन समस्त भावों के प्रति मन को सदैव जागरूक रखना चाहिए जिससे तीव्र अनिष्टकारी भावना जाग्रत न हो। कृत-कारित-अनुमोदित तीनों रूपों से परित्याग करना। इस प्रकार नैतिक सदाचार द्वारा जीवन को शुद्ध और समाज को सुसंस्कृत बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया है।

तीन गुणव्रत

इन ५ मूल व्रतों के अलावा कुछ ऐसे नियम भी गृहस्थ या श्रावक या मानव के बताएँ हैं जिनके द्वारा मानव की तृष्णा व संग्रह वृत्ति पर नियन्त्रण हो, इन्द्रियलिप्सा का दमन हो और दानशीलता की भावना हो। चारों दिशाओं में गमन मार्ग आयात-निर्यात की सीमा बाँध लेना चाहिए। अतप मर्यादा सहित जल थल में दूरी सीमाओं के अनुसार निर्धारण कर व्यापार आदि करना। हिंसक चिन्तन व अस्त्र शस्त्र और अनर्थकारी वस्तुओं का दूसरों को दान न देना जिसका वह स्वयं उपयोग नहीं करना चाहता है। इनका आदर्श गृहस्थ को परित्याग करना आवश्यक है। इनके द्वारा मूल व्रतों के गुणों में वृद्धि होती है अतः इन्हें गुणव्रत कहा गया है।

चार शिक्षा व्रत

(१) सामायिक—

गृहस्थ को इसकी आवश्यकता पर जोर दिया है। सामायिक यानि समता भाव यह मन की साम्य अवस्था है जिसके द्वारा हिंसादि समस्त अनाचारी प्रवृत्तियों का दमन हो। भगवान महावीर ने श्रावक को अधिक समय शांत और शुद्ध वातावरण में मन को सांसारिकता से निवृत्त कर शुद्ध ध्यान धर्म चिन्तन में लगाने को कहा है।

(२) पोषधोपवास

गृहस्थ या श्रावक इसमें अपने गृह, व्यापार, खाना-पीना छोड़कर अपना दिन का पूर्ण समय धार्मिक क्रियाएँ व स्वाध्याय, गुरुदर्शन, वंदन में पूर्ण करे जिससे उसे भूख-प्यास की वेदना पर विजय प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त हो।

(३) उपभोग-परिभोग परिमाण—

विशेष प्रकार के पेय, द्रव्य, वनस्पति, अन्नादि, वस्त्र, आभूषण, शयनासन, वाहन आदि का त्याग व निश्चित सीमा का निर्धारण करना ।

(४) अतिथि संविभाग—

साधु-साध्वियों को श्रद्धापूर्वक आहार, पानी, वस्त्र औषधि का दान करना, योग्य पात्रों की यथोचित सहायता करना आदि । इसके द्वारा मानव अपने को सुशिक्षित व सभ्य बना सकता है ।

संलेखना

महान् संकट, दुर्मिक्ष, असाध्य रोग, वृद्धावस्था में जब मानव व श्रावक को यह प्रतीत होता है कि अब वह इस विपत्ति से बच नहीं सकता तो कष्टमय व्याकुलतापूर्वक देह त्याग करने की अपेक्षा यही श्रेयष्कर है कि वह अपना आहार-पान घटाता जाये जिससे चित्त में क्लेश, व्याकुलता उत्पन्न न हो और शान्त भाव से वह प्राणत्याग करे इसे ही संलेखना कहा गया है ।

आत्मघात की संज्ञा इसे प्रदान नहीं कर सकते । क्योंकि आत्मघात तीव्र राग द्वेष या कलहपूर्ण वृत्ति का परिणाम है । इसमें मानव प्राणघात, शस्त्र, विष के प्रयोग आदि घातक क्रियाओं द्वारा करता है ।

श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ

उपरोक्त समस्त गृहस्थधर्म के व्रतों पर ध्यान देने से स्पष्ट दिखाई देगा कि पूर्णरूपेण श्रावकधर्म ग्रहस्थों या व्यक्तियों द्वारा पालन संभव नहीं है इसलिए गृहस्थ की परिस्थितियों और सुविधाओं एवम् शारीरिक-मानसिक प्रवृत्तियों के आधार पर श्रावकधर्म के साधना के स्वरूप की ११ श्रेणियाँ नियत की गई हैं ।

(१) प्रथम प्रतिमा : सम्यक् दृष्टि—भले ही परिस्थितिवश व्यक्ति अहिंसादिक व्रतों का पालन न कर सके, परन्तु जब उसकी दृष्टि सुधर चुकी होती है तो वह भव्यसिद्ध हो जाता है और कभी न कभी वह चारित्रिक शुद्धि प्राप्त कर मोक्ष का अधिकारी बन सकता है ।

(२) दूसरी प्रतिमा व्रत—पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों का निरतिचार रूप से पालन करने का अभ्यास होना आवश्यक है ।

(३) तीसरी प्रतिमा : सामायिक—इसका स्वरूप शिक्षाव्रतों में विस्तृत रूप से वर्णित है ।

(४) पोषधोपवास प्रतिमा—इसमें गृहस्थ उपवास विधि का पालन करने में समर्थ होता है जिसका स्वरूप ऊपर वर्णित है ।

(५) सच्चित्त त्याग—इसमें श्रावक को स्थावर जीवों की हिंसा वृत्ति को विशेष रूप से नियन्त्रित करना व शाक कन्दमूल आदि, वनस्पति और अप्रासुक जल का परित्याग करना आवश्यक होता है ।

(६) रात्रि-भोजन का त्याग—इसमें रात्रि भोजन का त्याग करना; क्योंकि रात्रि भोजन में कीट पतंगा आदि अनेक सूक्ष्म जन्तु आहार के साथ खाने या उनके द्वारा आहार अशुद्ध होने का भय बना रहता है । उनसे अनेकों रोग फैलने का भय रहता है ।

(७) ब्रह्मचर्य—इसमें श्रावक को स्व-स्त्री संसर्ग भी त्याग देना व मनोविकार उत्पन्न करने वाले कथा साहित्य पढ़ना-सुनना और तत् सम्बन्धी वार्तालाप का भी परित्याग करना आवश्यक होता है ।

(८) आरम्भ त्याग—श्रावक की सांसारिक आसक्ति घटना आवश्यक है। वह घर-गृहस्थी सम्बन्धी भार भी जैसे काम, धन्वे व व्यापार सम्बन्धी भार भी पुत्र आदि को दे देता है।

(९) परिग्रह त्याग—यहाँ तक आते-आते श्रावक ऐसे उत्कर्ष को पहुँच जाता है कि उसको घन सम्पत्ति आदि से मोह नहीं रहता है और भोजन-वस्त्र का नाम मात्र का परिग्रह रखता है।

(१०) अनुमति प्रदान न करना—इसमें श्रावक अपने पुत्र-पुत्री आदि को काम-धन्वों या अन्य किसी प्रकार की अनुमति प्रदान नहीं करता है।

(११) उद्दिष्ट त्याग—यहाँ पर श्रावकधर्म का पालन करने वाला श्रावक अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। इसमें श्रावक अपने निमित्त बना भोजन ग्रहण नहीं करता और भिक्षा वृत्ति अंगीकार कर लेता है। सांसारिकता में रहकर ही या कभी-कभी सांसारिकता को त्याग कर मुनिधर्म भी अंगीकार कर लेता है।

उपरोक्त आदर्श गृहस्थ बनाम श्रावकधर्म का स्पष्ट एवम् सूक्ष्मतम विवेचन से स्पष्ट होता है कि इन विधान सूत्रों के आधार पर संसार का कोई भी प्राणी अर्थात् मानव अपने जीवन का सुरुचि पूर्ण तरीके से व्यवस्थित कर सकता है एवम् उसे जीवन का सर्वोच्च वैभव प्राप्त हो सकता है। जैन परिभाषा के अनुसार उसे हम आदर्श श्रावक के रूप में सम्बोधित कर सकते हैं, साथ ही सामान्य भाषा में उसे हम आदर्श गृहस्थ के सर्वोच्च सम्मान शिखर पर विमूषित कर सकते हैं।

